शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

शारीरकभाष्य का उपमा वैषिष्ट्य

मुकेश कुमार गुप्ता (शोधार्थी)
संस्कृत विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

*शारीरकभाष्य अद्वैतवेदान्त के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। इस भाष्य में जगदगुरू आदिशंकराचार्य द्वारा महर्षि बादरायणकृत ब्रह्मसूत्रों की बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की गई है। अतः इसे ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य भी कहा जाता है। यह भाष्य न केवल अद्वैत की समस्त विषयवस्तु तथा उसके सिद्धान्तों को सांगोपांग रूप से उपस्थित करता है अपितु वेदान्त जिज्ञासुओं की पिपासा को भी शांन्त करता है। ''शारीरक यानी इस कुत्सित-दृष्य जड़ परिच्छिन्न शरीर में अत्यन्त विशुद्ध अविकृत प्रकाशरूप से वर्तमान द्रष्टा चेतन महान् विभु परमात्मा उसका विशद रूप से वर्णन करने वाला व्याख्यान शारीरकभाष्य माना जाता है''।***1*

यह सम्पूर्ण भाष्य विषय वस्तु की दृष्टि से चार अध्ययों -समन्वय, अविरोध, साधन तथा फल में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं। अतः उसमें कुल सोलह पाद हैं। आदिशंकराचार्य जी ने अपनी मेधा के बल पर अद्वैतवाद के विभिन्न पक्षों को बडे ही सम्यक् ढ़ग से प्रतिपादित किया है। उनके द्वारा अत्यन्तगूढ़ विषयों को यथेष्ट सरल रूप से समझाने का प्रयास किया है। इसी प्रयास में उन्होंने विभिन्न दार्शनिक एवं अलौकिक तथ्यों को अनेक लौकिक उपमानों के साथ साम्य दिखाकर भी समझाया है। इसके फलस्वरूप शारीरकभाष्य में यत्र-तत्र अनेक सुन्दर उपमाओं का प्रयोग दिखलाई पड़ता है। ये उपमाएँ प्रसंगानुकूल होने के साथ-साथ, ज्ञातव्य विषय की गूढ़ग्रन्थि को सुलझाने में सफल प्रतीत होती हैं। भाष्य में प्रयुक्त इन उपमाओं का अपना एक वैशिष्ट्य है। इस शोध पत्र में उन्हीं उपमाओं का संक्षिप्त अवलोकन करने का प्रयत्न किया गया है।

शारीरकभाष्य में उपमा

शारीरकभाष्य के चतुर्थ सूत्र ''तत्तुसमन्वयात''' की व्याख्या के समय शंकराचार्य जी निवृत्यात्मक कार्य को अभाव का बोधक तथा ज्ञान को कर्ता के लिये उदासीनभाव का जनक बतलाते हुए अग्नि के साथ समानता दिखलाते हैं-

अभावबुद्धिष्चैदासीन्यकारणम्। सा च दग्धेन्धनाग्निवत्स्वयमेवोपषाम्यति।**2**

उपर्युक्त उपमा के माध्यम से शारीरकभाष्यकार ''ब्राह्मणों न हन्तव्यः'' में न' से उद्भूत अभावज्ञान को सही बता रहे हैं।**3** यह अभाव ज्ञान ब्रह्महत्या रूपी कार्य के प्रेरक भाव को समाप्त कर रहा है। अतः व्यक्ति हनन क्रिया से पराड़मुख हो उदासीन भाव के कारण शांत हो जाता है। यह कार्य ठीक उसी भांति होता है जैसे लकड़ी के जलकर समाप्त हो जाने पर आग स्वयं बुझ जाती है। यहां भाष्यकार ने हिंसा में प्रवर्तन करने वाले भाव की उपमा दग्धेन्धनाग्नि से की है।

आगे चलकर भाष्यकार- एक आत्मवित् के जीवित रहते हुए उसकी क्या स्थिति होती है ?- इस तथ्य को वृहदारण्यकोपनिषद् के एक उद्धरण

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

से समझाते हैं। इस उद्धरण में सर्पकेंचुली का उपमान प्रस्तुत किया गया है -

ब्रह्मविद्विषया श्रुतिः तद्यथाऽहिनिर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता षयीतैवमेवेदं शरीरं शे।**4**

अर्थात् जिस प्रकार सर्प की काँचुली बाँबी के ऊपर मृत एवं सर्प द्वारा परित्यक्त पड़ी रहती है, उसी प्रकार विद्वान् जिसने अभिमान त्याग दिया है उसका शरीर पड़ा रहता है।

उपर्युक्त उदाहरण में सर्प काँचुली का उपमान, आत्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात शरीर की दशा को बड़ी ही सरलता से प्रतिपादित कर रहा है। सर्प जब काँचुली युक्त होता है तब वह मद में रहता है। आत्मज्ञान के अभाव में मनुष्य की स्थिति भी कुछ ऐसी ही होती है, किन्तु विवेकात्मक ज्ञान हो जाने पर वह आत्मवित् होकर अशरीरत्व की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। शारीरकभाष्य में आगे प्रथम अध्याय के आनन्दमयधिकरण में ब्रह्म को आनन्दमय कहा गया है।**5** पूर्वपक्षी आनन्दमय शब्द में 'मयट्' प्रत्यय का प्रयोग विकार अर्थ में बतलाकर, ब्रह्म के अतिरिक्त प्रकृति, जीवादि को आनन्दमय कहते हैं। यहाँ श्री शंकराचार्य धनिक व्यक्ति का उपमान प्रस्तुत कर पूर्वपक्षियों के मत का खण्डन करते हैं-

यो ह्यन्यानन्दयति स प्रचुरानन्द इति प्रसिद्धं भवति। यथा लोके योऽन्येषां धनिकत्वमापादयति स प्रचुरधन इति गम्यते तद्वत्।**6**

यहां ब्रह्म की उपमा धनिक व्यक्ति से की गई है। भाष्यकार ने उपर्युक्त उपमा के माध्यम से मयट् प्रत्यय का प्रयोग प्राचुर्यार्थ में बताया है। ब्रह्म सभी को आनन्दित करता है। यह व्यावहारिक सत्य है कि कोई निर्धन व्यक्ति किसी व्यक्ति की सहायता कर उसकी स्थिति में सुधार लाने में उतना समर्थ नहीं है जितना कि एक धनवान। ठीक इसी प्रकार जो यथार्थ में आनन्दस्वरूप है वही तो अन्य के आनन्द का हेतु बन सकता है और यह हेतु एकमात्र ब्रह्म ही है। यहां धनिक व्यक्ति रूपी उपमान, शंकराचार्य जी के मन्तव्य को और अधिक स्पष्ट कर रहा है।

भाष्य में आगे चलकर आत्मा के एकरसत्व का प्रसंग आता है।**7** शंकराचार्य जी आत्मा अर्थात् ब्रह्म को अन्तर एवं बाह्य भेद से रहित सम्पूर्ण रसघन कहते हैं। अर्थात् आत्मा एक रूप है। यहां भाष्यकार अपने मत के समर्थन में वृहदारण्यकोपनिषद् को उद्धृत करते हैं। इस उद्धरण में आत्मा के रसघनत्व की उपमा नमक के डेले से दिखलाई है -

स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्य कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्मानन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ।**8**

अर्थात् जिस प्रकार नमक का डला (टुकड़ा), अन्तर और बाह्य भेद से रहित सम्पूर्ण रसघन ही है, (हे मैत्रेयी!) उसी प्रकार यह आत्मा अन्तर् बाह्य भेद से शून्य, सम्पूर्ण प्रज्ञानघन ज्ञानैकरस ही है।

यहां आत्मा के एकरूपत्व के सन्दर्भ में नमक के डले का उपमान अत्यन्त सटीक बैठ रहा है। उपर्युक्त उपमा आत्मा (ब्रह्म) का एकरसत्व स्पष्ट कर रही है। अतः आत्मा में अन्य प्रपंचादि का पूर्णतः बाध है।

इस भाष्य में आगे चलकर, ब्रह्मसाक्षात्कार होने के अनन्तर देह आदि संघात से उत्क्रमण करते हुए जीव का परमात्मा से ऐक्य होना बतलाया है।**9** जीव देह, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि आदि के संघात वाला है। परमात्मा इन सभी से पूर्णतः मुक्त है, भिन्न है। यहां अवश्य ही प्रश्न उठ सकता है कि इन संघातों से युक्त जीव और

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

पूर्णतः निर्लिप्त परमात्मा का ऐक्य कैसे सम्भव हो सकता है ? इसी प्रश्न के समाधानार्थ भाष्यकार मुण्डकोपनिषद् का उद्धरण देते हैं। जिसमें उपमा का प्रयोग दृष्टव्य है -

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।

तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यम्।।**10**

अर्थात् जिस प्रकार नदियां अपने नाम, रुपादि को छोड़कर समुन्द्र में मिल जाती हैं (उनकी पृथक् पहचान नहीं रहती) उसी प्रकार विद्वान् (आत्मवित्) व्यक्ति भी अपने समस्त नाम, रुपादि लक्षणों से मुक्त होकर परं दिव्य पुरूष को प्राप्त होता है।

यहां उपर्युक्त प्रसंग में नदी से की गई उपमा भाष्यकार के अभीष्ट प्रतिपाद्य सम्बन्धी आशंकाओं के निराकरण में अत्यन्त सफल दिखलायी पड़ रही है।

शारीरकभाष्य में इस प्रकार की उपमाओं के और भी उदाहरण देखने को मिलते हैं श्री शंकराचार्य जी ब्रह्म और जगत् में अनन्यत्व बतलाते हैं।**11** यहां प्रश्न उठता है कि जगत् तो नाना रूप और नाम वाला है अर्थात् उसमें अनेकत्व के दर्शन होते हैं और ब्रह्म इससे पूर्णतः भिन्न एक है। ऐसा होने पर इन दोनों में अनन्यता कैसे हो सकती है ? भाष्यकार इसका उत्तर भी उपमा के माध्यम से देते हैं-

(...यथा वृक्षोऽनेकश्षाख एवमनेकषक्तिर्प्रवृत्तियुक्तं ब्रह्म।)

अत एकत्वं नानात्वं चोभयमपि सत्यमेव। यथा वृक्ष इत्येकत्वं षाखा इति नानात्वम। यथा च समुद्रात्मनैकत्वं फेनतरंगाद्यात्मनानानात्वम्। यथा च मृदात्मनैकत्वंघटषरावाद्यात्मना नानात्वम्।**12**

आदिशंकराचार्य जी अन्ततः कहते हैं कि उपर्युक्त वृक्ष, समुद्र, और मृत्तिका इन सभी उपमानों की भांति ब्रह्म भी करण रुप से एक है तथा भोक्ता, भोग्य आदि प्रपंचरुप से अनेक है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त उपमा मालोपमा का उदाहरण है। यहां ब्रह्म में एकत्व-अनेकत्व के व्यवहार का साधम्र्य -वृक्ष, समुद्र, मिट्टी आदि उपमानों से प्रदर्षित किया गया है।

आगे भाष्य में श्री शंकराचार्य जी जीव को अणु परिमाण वाला बताते हैं।**13** जब विरोधी जन जीव के अणु स्वरूप होने से जीव की सम्पूर्ण शरीरगत उपलब्धि पर प्रश्नचिह्न खड़ा करते हैं तब भाष्यकार चन्दनबिन्दु का उदाहरण प्रस्तुत कर जीव की सम्पूर्ण शरीर में उपलब्धि दिखलाते हैं-

यथा हि हरिचन्दनबिन्दुः षरीरैकदेषसंबद्धोऽपि सन्सकलदेहव्यापिनमाह्लादं करोति, एवमात्मापि देहैकदेषस्थः सकलदेहव्यापिनीमुपलब्धिं करिष्यति।**14**

भाष्य में आगे चलकर ''जलगतसूर्यप्रतिबिम्ब'' की उपमा प्राप्त होती है जोकि दर्शनीय एवं विषयानुकूल प्रयोग है। आत्मा का ऐकत्व बताये जाने पर एक प्रश्नोदय की सम्भावना होती है कि जब आत्मा एक है तो उसमें कर्मफल सम्बन्ध के कारण, कर्मफल का संकट हो जायेगा अर्थात् मिश्रण हो जायेगा। भाष्यकार उपर्युक्त सूर्यप्रतिबिम्ब के माध्यम से इस षंका का उन्मूलन करते हैं-

आभास एवं चैष जीवः परस्यात्मनो जलसूर्यकादिवत्प्रतिपन्तव्य।**15**

इस उपमा के माध्यम से शंकराचार्य जी ने स्पष्ट कर दिया है कि एक जलगतसूर्यप्रतिबिम्ब के कम्पित होने पर जिस प्रकार अन्य प्रतिबिम्बों में

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

कम्पन नहीं होता, यद्यपि सूर्य एक ही है। उसी प्रकार जीवों के कर्म परस्पर एक दूसरे का मिश्रण नहीं करते यद्यपि आत्मा एक ही है।

आगे भाष्य में ब्रह्मज्ञान को अन्यान्तर जन्म के हेतुभूत् कर्मबीज का नष्ट करने वाला बताया है।**16** भाष्यकार इसके समर्थन में प्रमाण स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता का उद्धरण प्रस्तुत करते हंै। इस उद्धरण में ब्रह्मज्ञान की उपमा अग्नि से करते हुए कहा गया है:-

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरूतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरूते तथा।**17**

इस उद्धरण के अनुसार (ब्रह्म) ज्ञान सम्पूर्ण कर्मों को उसी प्रकार भस्म् कर देता है जैसे प्रज्जवलित अग्नि ईन्धन को।

यहीं इसी प्रसंग में भाष्यकार -ज्ञान से नष्ट हुए कर्म पुनर्जन्म का हेतु क्यों नहीं बनते? इसका कारण बतलाते हुए एक और उपमायुक्त स्मृतिं प्रमाण उद्धृत करते हैं-

बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेषैर्नात्मा संपद्यते पुनः ।**18**

अर्थात् जैसे अग्नि से भूने गये बीज पुनः नहीं उगते वैसे ही ज्ञानाग्नि से दग्ध हुए क्लेषों से पुनः षरीर उत्पन्न नहीं होता।

यहाँ ज्ञानाग्नि से नष्ट क्लेषादि कर्मों की उपमा भुने हुए बीजों से दिखलाई है। शारीरकभाष्य के चतुर्थ अध्याय में भी इसी प्रकार अनेक उपमाएँ प्राप्त होती हैं। वहाँ भी भाष्यकार अद्वैतवेदान्त के प्रतिपादन में यदाकदा इनका प्रयोग करते हैं। तत्वज्ञान होने पर विद्वान् के पूर्ववर्ती समस्त पापों का क्षय हो जाता है।**19** इस प्रसंग को विषयबोध की दृष्टि से और सरल बनाने के लिये भाष्यकार उपमायुक्त श्रुति प्रमाण का ही उल्लेख करते हैं-

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते।**20**

अर्थात् जिस प्रकार सींक का अग्रभाग अग्नि में प्रक्षिप्त करने से तत्काल जल जाता है, इसी प्रकार इस विद्वान् के सभी पाप दग्ध हो जाते हैं। इसी अध्याय में आगे चलकर आत्मा में गमन क्रियारूपी व्यावहारिक सत्ता की बात की जाती है।**21** आत्मा में पारमार्थिक रुप से यह कार्य होता ही नहीं है। वह तो बुद्धि आदि उपाधि के गति करने से ऐसा आभासित होता है। भाष्यकार आत्मा में इस प्रकार के आभासित व्यवहार को भी उपमा के माध्यम से और अधिक स्पष्ट करते हैं। वह यहाँ ''घटगताकाश में चलनक्रियां''**22** को उपमान के रुप में प्रस्तुत करते हैं।

आगे इस अध्याय के अन्त में मुक्त पुरुष की परबह्म से अविभक्त स्थिति - सम्बन्धी चर्चा का उदय होता है।**23** श्री शंकराचार्य जी श्रुति का प्रमाण देकर, मुक्त पुरुष द्वारा परब्रह्म को प्राप्तकर दोनों के अभेद को स्थापित करते हैं-

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।**24**

अर्थात् जैस शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध जल वैसा ही हो जाता है, वैसे ही हे गौतम! विज्ञानी मुनि का आत्मा भी हो जाता है।

यहाँ शुद्धजल और जलराशि, उपमान के रुप में तथा मुक्त पुरुष और ब्रह्म उपमेय के रुप मे प्रयुक्त हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शारीरकभाष्य में भाष्यकार ने आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र उपमाओं का प्रयोग किया है। जिनमें कुछ शंकराचार्य की मौलिक सृष्टि प्रतीत होती हैं तथा कुछ प्रमाण स्वरूप उद्धृत हैं। काव्यशास्त्रीय

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

दृष्टि से इन उपमाओं में पूर्णोपमा, लुप्तोपमा तथा मालोपमा आदि के उदाहरण प्राप्त होते हैं। शारीरकभाष्य के समस्त उपमान प्रदर्शन का प्रयोजन विषयवस्तु के सौन्दर्यवर्धन की अपेक्षा विषयबोध की सुगमता अधिक है। अद्वैतवाद के अत्यन्तगूढ़ आध्यात्मिक विषय इन उपमाओं के माध्यम से सरल हो चले हैं। जब व्यक्ति अभीष्ट ज्ञेय विषय को अपने आसपास के उदाहरणों से समझाने का प्रयास करता है तो पाठकों के लिये उसका विषयबोध अधिक प्रभावी एवं त्वरित होता है। यही कार्य शारीकभाष्यकार जगदगुरु आदिशंकराचार्य जी द्वारा किया गया है। अद्वैतवेदान्त के सिद्धान्तों का सहज प्रतिपादन ही, कहीं न कहीं इन उपमाओं का अपना वैशिष्ट्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य-प्रास्ताविक वक्तव्य, पृष्ठ सं. 12, व्याख्याकार स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2011।

2.शारीरकभाष्य, 1/1/4, पृष्ठ सं.-73।

3. वही, पृष्ठ 73।

4.वृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/7।साभार-षारीरकभाष्य, 1/1/4, पृष्ठ सं. 63।

5. शारीरिक भाष्य,1/1/12-19 ।

6. वही 1/1/14, पृष्ठ सं.-105.

7. वही , 1/3/1- 'द्युभ्वाद्यायतनं स्वषब्दात् ।

8. वृहदारण्यकोपनिषद 4/5/13, साभार - शारीरकभाष्य, 1/3/1, पृष्ठ 201।

9. शारीरकभाष्य, 1/4/21, उत्क्रमिष्यत एवं भावादित्यौडुलौमिः ।

10. मुण्डकोपनिषद 3/2/8, साभार शारीरकभाष्य 1/4/21, पृष्ठ 322।

11. मुण्डकोपनिषद 3/2/8 /, साभार शारीरकभाष्य 1/4/21 पृष्ठ 322 तदनन्यत्वमारम्भण शब्दादिभ्यः।

12. वही पृष्ठ -363.

13. वही, 2/3 /19-32

14. वही, 2/3/23 ।

15. वही, 2/3/50, पृष्ठ सं. 535।

16. वही, 3/3/32, यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्।

17. श्रीमद्भगवतगीता 4/36, साभार - शारीरकभाष्य -3/ 3/32, पृष्ठ 700।

18. वही,3/3/32

19. वही ,4/1/13, पृष्ठ 812.

20. छान्दोग्योपनिषद् 5/24/3, साभार- शारीरकभाष्य, 4/1/13 पृष्ठ 813.

21. वही 4/3/14 का भाष्य।

22. सर्वगतत्वेऽपि चात्मन आकाषस्येव घटादिगमने, बुद्धयाद्युपाधिगमने गमनप्रसिद्धिरिति...वही 4/3/14 ।

23.शा.भा. अध्याय -4 , पाद -3, सूत्र -14, पृष्ठ सं. 864.

24. वही, 4/4/4 अविभागेन दृष्टत्वात्।

25. कठोपनिषद्- 4/15, साभार- शारीरकभाष्य 4/4/4, पृष्ठ 870